आकलन की अवधारणा से जुड़े मुद्दे

रोहित धनकर

वर्तमान भारतीय शैक्षिक विमर्श में आकलन बहस का महत्त्वपूर्ण विषय बना हुआ है। आकलन के तरीकों में शिक्षा के उद्देश्य एवं ज्ञान की धारणा संबंधी अनेक मान्यताएं निहित होती हैं। यह लेख व्यापक स्तर पर किए जाने वाले आकलनों की समस्याओं का विश्लेषण करता है और सवाल उठाता है कि क्या व्यापक स्तर पर किए जाने वाले इन बाहरी आकलनों के जरिए बच्चों के सीखने के बारे में सार्थक दावे किए जा सकते हैं?

नमस्कार*, मैं व्यापक स्तर पर आकलन तथा उससे जुड़ी कुछ अवधाणात्मक समस्याओं पर बात करूंगा। परन्तु उससे पहले कुछ बातें स्पष्ट कर देनी चाहिएं। आज मैं रचनात्मक आकलन पर कुछ भी नहीं कहूंगा। मुझे व्यक्तिगत रूप से यह लगता है कि उसकी संकल्पना अलग से नहीं करके शिक्षाशास्त्र के ही एक हिस्से के रूप में की जानी चाहिए। अर्थात् शिक्षाशास्त्र की धारणा को स्वयं में ही इस तरह फैलाएं कि रचनात्मक आकलन उसका एक अनिवार्य हिस्सा बन जाए और संभवतः ऐसा करना इसके लिए विविध उपाय ईजाद करने से अधिक लाभदायक भी सिद्ध हो। परन्तु इस विषय पर और अधिक चर्चा नहीं करूंगा।

दूसरी बात यह है कि यह प्रस्तुति केवल बाहरी व्यापक पैमाने पर किए जाने वाले आकलनों के बारे में है। जैसा प्रो. जैकब थारू ने कल कहा था। ऐसे आकलनों में से कई तो एक अर्थ में प्रबंधन संबंधी अथवा प्रबंधकीय होते हैं। आपको लग सकता है कि मैं यह कह रहा हूं कि वे निरर्थक हैं, पर ऐसा मैं कतई नहीं कह रहा। मैं इस पर वापस लौटूंगा। उनकी आवश्यकता हमें कई कारणों से पड़ सकती है। जब आप किसी बालिका को प्रमाणित करते हुए यह कहना चाहें कि उसने अपनी आरंभिक शिक्षा या माध्यमिक शिक्षा या किसी भी स्तर की शिक्षा पूरी कर ली है, तो आपको ऐसा कह पाने के आधार के रूप में किसी तरह के आकलन की जरूरत होगी। अगर आप यह जांचना चाहते हैं कि आपका स्कूल दरअसल ठीक से काम कर रहा है और आप अपने छात्र-छात्राओं के माता-पिता के समक्ष यह सिद्ध करना चाहते हैं कि उनके बच्चे वास्तव में सीख रहे हैं तो भी आपको आकलनों की जरूरत होगी। अतः मैं यह नहीं कह रहा हूं कि वे निरर्थक हैं। मैं उनका क्या प्रभाव पड़ता है और वे कि प्रकार आयोजित किए जाते हैं और क्या हम उससे कुछ बेहतर कर सकते हैं, इसके बारे में बात करना चाहूंगा। मैं आगे इन्हीं पक्षों पर ध्यान देना चाहूंगा।

मैं ऊंचे दांव (हाई स्टेक) वाले और नीचे दांव (लो स्टेक) वाले आकलनों में खास अंतर नहीं करता। क्योंकि आप यह घोषणा कर सकते हैं कि फलां आकलन कम दांव वाला है और कोई स्कूल या कोई शिक्षक या शिक्षा सचिव यह सोच सकते हैं कि हमारी शिक्षा

* यह 'विप्रो एप्लाइंग थोट इन स्कूल्स' के वर्ष 2012 के सालाना पार्टनर फोरम में दिया गया वक्तव्य है। यह लेख इस वक्तव्य का लिप्यान्तरित एवं अनुदित रूप है।

व्यवस्था खराब तरीके से काम कर रही है और तब वे आपके सुझावों के आधार पर, किसी तरह के कार्य पत्रक बनाकर आपके स्कूल को भेज सकते हैं। इससे शिक्षक का जीवन तकलीफदेह बन सकता है। सो अपनी मंशा - चाहे वह बच्चे या शिक्षक के जीवन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने की हो या ना हो, बच्चे कैसे सीख रहे हैं और कितना सीख रहे हैं इसके बारे में किसी भी घोषणा का उपयोग हमेशा किया जा सकता है। अतः मैं ऊंचे दांव या नीचे दांव या ऐसी किसी भी बात की कोई चर्चा इस वक्तव्य में नहीं करूंगा।

इस प्रस्तुति का ढांचा कुछ इस प्रकार का है : मैं मुख्यतः तीन परस्पर संबंधित अवधारणात्मक मुद्दों पर बात करूंगा। सबसे पहले मैं इस प्रश्न पर चर्चा करूंगा कि आकलन किस चीज का होता है। इसके उदाहरण के रूप में *पीसा* (प्रोग्राम फोर इन्टरनेशनल स्टूडेन्ट असैसमेन्ट, अंतर्राष्ट्रीय छात्र आकलन कार्यक्रम) को लूंगा। दूसरा मुद्दा है विरल ज्ञान बनाम समृद्ध ज्ञान की परीक्षा। मैं इन शब्दों की परिभाषा देते हुए उन पर चर्चा करूंगा। तीसरा पक्ष आकलन के पद्धतिगत निहितार्थों का - अर्थात् परिप्रेक्ष्य बनाम व्यापक रूपों का है। मैं इनको भी परिभाषित करने की चेष्टा करूंगा।

इसके बाद मैं जवाबदेही के मुद्दों पर कुछ कहूंगा। जिस शिक्षा व्यवस्था को आकलनकर्ता नहीं समझते, उसे प्रभावित करने के कुछ नाजायज प्रयास भी हो सकते हैं। इन आकलनों के द्वारा हम ऐसे ही कुछ नतीजों तक पहुंच भी सकते हैं। यह सत्ता का खेल है या फिर वस्तुनिष्ठ तथा सार्थक प्रमाण, इस मुद्दे को भी हमें जांचना होगा। पर यह हम अवधारणात्मक मुद्दों पर चर्चा के बाद करेंगे।

आपमें से कुछ को अगले पंद्रह मिनट तक यह निश्चित रूप से लगेगा कि मैं बाल की खाल उधेड़ने में जुटा हूं। पर अगर आप इस दौरान मेरे साथ रहे, तो मैं आपको बाल की खाल के महीन तंतुओं से परे कुछ व्यापक स्तर के या अधिक ठोस निहितार्थ प्रस्तुत करने की चेष्टा करूंगा।

सबसे पहले यही चर्चा करें कि *पीसा* आकलन (अंतर्राष्ट्रीय छात्र आकलन कार्यक्रम) आखिर किस चीज का आकलन करता है? यह समझने के लिए मैं 2007 में प्रकाशित नीना बॉन्डेरप डोहन के आलेख *'नॉलेज' एण्ड स्किल्स फॉर पीसा : असैसिंग द असैसमेंट'* का इस्तेमाल कर रहा हूं। *पीसा* का दावा है कि वे ज्ञान तथा जीवन कौशलों को आंकते हैं। अर्थात् उनका सरोकार दरअसल छात्रों की उस क्षमता से है जिसके द्वारा शिक्षार्थी अपने ज्ञान और कौशलों का प्रयोग करता है। जीवन की विविध और वास्तविक परिस्थितियों में वह समस्याओं को उठाते, सुलझाते और उन्हें व्याख्यायित करते समय कैसे विश्लेषण करता है, कितना तर्कसंगत होता है और प्रभावी संप्रेषण करता है या नहीं।

अतः *पीसा* आपको यह नहीं कहता कि शिक्षार्थियों के पाठ्यचर्या विषयक ज्ञान को आंकता है या उनकी पाठ्यचर्या के मानदण्डों के हिसाब से छात्रों की परीक्षा लेता है। *पीसा* चर्चा इस बात की करता है कि शिक्षार्थी काम किस तरह करेंगे - वे एक लोकतांत्रिक समाज में तथा आर्थिक प्रक्रियाओं में भागीदारों के रूप में कितनी कुशलता से काम करेंगे। अतः अपनी परीक्षा द्वारा वे दावा यह करना चाहते हैं कि ये लोग कितने सफल होंगे या इस प्रकार की स्थिति में वे कितनी अच्छी तरह से काम करेंगे। यह बिन्दु महत्त्वपूर्ण है। इसलिए क्योंकि *पीसा* परीक्षाओं में कौन सबसे ऊपर है और कौन सबसे नीचे इस मान्यता के कारण ही उस पर इतना बल दिया जाता है।

अब, यहां जो तर्क दिया जा रहा है वह यह है कि किसी भी परिस्थिति में कुशलतापूर्वक काम करना परिस्थितियों की जटिल मांगों, संभावनाओं और सीमाओं के संदर्भ में उपयुक्त रूप से काम करने के समान है। मान लीजिए कि मैं एक मॉल में खाने-पीने का सामान खरीद रहा हूं। इसमें तमाम चीजों का ध्यान रखना होगा। यहां केवल गणित की ही जरूरत नहीं होगी। मुझे कई दूसरी बातों का भी ध्यान रखना होगा, जिसमें मेरे फ्रिज में सलामी रखने की कितनी जगह है, उसकी कीमत क्या है, मैं इस वक्त इतना खर्च कर सकता हूं या नहीं, मैं उसे घर कैसे ले जाऊंगा, आदि-आदि शामिल हैं।

समस्या बिल्कुल सरल-सी है। यहां मुद्दा केवल गणितीय ज्ञान का नहीं है, बल्कि इस खास परिस्थिति में उपयुक्त गणितीय ज्ञान के उपयोग का है। अतः ऐसा कोई इंसान जो गुणा-भाग-जोड़-बाकी जैसी चारों बुनियादी संक्रियाओं में बहुत अच्छा हो, वह भी खरीददारी करने में और यह आंकने में असफल हो सकता है कि उसके पास कितना पैसा है। कुछ लोग और अधिक रोचक तरीके से असफल हो सकते हैं। उन्हें यह पता होता है कि उनके पास कितना पैसा है और वे आज कीमत चुका सकते हैं या नहीं, पर वे यह अंदाजा नहीं लगा सकते कि महीने के अंत में क्या स्थिति होगी। यहां गणित आपकी सहायता नहीं कर सकता। कुछ दूसरी चीजें, जो आपकी जीवन शैली को दर्शाती हैं और तमाम अन्य

रोहित धनकर

जाने-माने शिक्षाविद् एवं दिगन्तर के मानद सचिव। आजकल अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बैंगलोर में शिक्षा दर्शन के प्रोफेसर हैं।

चीजें भी इस क्षमता को प्रभावित करती हैं।

अतः नीना बॉन्डेरप डोहन यह कहने की चेष्टा कर रही हैं कि वास्तविक जीवन स्थितियों में कुशलतापूर्वक काम करने के लिए आपको उस परिस्थिति की पेचीदा मांगों, संभावनाओं तथा सीमाओं के अनुसार उपयुक्त प्रतिक्रिया करनी होगी। यह बात बिल्कुल सच है। अगर मुझे यह समस्या सुलझानी है कि मुझे कितनी रासायनिक खाद अपने खेत में डालनी चाहिए तो केवल रसायन शास्त्र का मेरा ज्ञान मदद नहीं कर सकता। कई दूसरी बातें इसे प्रभावित करेंगी। इसलिए वास्तविक जीवन में ज्ञान का उपयोग एक बेहद पेचीदा परिस्थिति में स्थित होता है, जहां एक से अधिक आयाम सक्रिय होते हैं। अतः अगर कोई यह दावा करे कि हम वास्तविक जीवन के लिए ज्ञान तथा कौशलों की परीक्षा कर रहे हैं तो उन्हें उन तमाम परिस्थितियों पर भी सोच-विचार करना होगा।

इस बात को ध्यान में रखते हुए, वे वास्तविक जीवन में समस्या निर्धारण तथा संभावित समाधान के सीमांकन के तीन स्तर चिह्नित करती हैं। पहला क्षेत्र आंतरिक स्तर है (डोमेन इन्टरनल लेवल)। इसका अर्थ है कि मैं कितना गणित या रसायन शास्त्र या फिर कितनी भाषा जानता हूं। दूसरा है समस्या का आंतरिक संदर्भ स्तर, जिसका अर्थ है कि जीवन की जटिल समस्याओं का समाधान करते समय भी हमें उस अनुशासन के नियमों का सम्मान करना चाहिए। अतः ऐसा करते समय हमें किसी प्रकार के समायोजन करने तथा किसी तरह के लचीलेपन को अपनाने की जरूरत पड़ सकती है।

तीसरा स्तर है समस्या निर्धारण का संदर्भ स्तर अर्थात् वास्तविक जीवन की असली मांगे और सीमाएं। इस तीसरे स्तर का संबंध वास्तविक जीवन स्थितियों की समझ तथा उनके आधार पर निर्णय लेने से अधिक है, न कि आपके अनुशासनात्मक ज्ञान से। अर्थात् आप संबंधित अनुशासन के ज्ञान का उचित उपयोग करके ऐसे समाधान को तलाशें जो उक्त स्थिति के लिए उपयुक्त हो। ऐसी प्रतिक्रिया करें जो उपयुक्त हो।

संक्षेप में कहें तो इस स्थिति में, वास्तविक जीवन का किया गया कोई भी वर्णन कभी भी ऐसा नहीं हो सकता कि वह वास्तविक जीवन की समस्या समाधान की मांगों का समुचित निरूपण कर सके। इस विषय में और गहरे उतरा जा सकता है और अधिक विश्लेषण किया जा सकता है। अगर मैं किसी समस्या को इस प्रकार रखूं और वर्णन करूं कि कोई व्यक्ति क्या कर रहा था और उसकी पूरी कहानी लिख डालूं तो भी हम परीक्षा कक्ष में उस कहानी को पढ़कर उस वास्तविक जीवन स्थिति को नहीं समझ सकेंगे। इसलिए क्योंकि वह व्यक्ति एक वास्तविक जीवन स्थिति में प्रतिक्रिया कर रहा होगा। ऐसी वास्तविक जीवन स्थिति जो किसी बाजार में या दुकान या खेत में घटने वाली है। ठीक उसी तरह जैसे आपकी कक्षा में आपकी शिक्षिका का समुचित निरूपण किसी परीक्षा परिस्थिति में नहीं किया जा सकता।

तो फिर क्या इस स्थिति में वास्तविक जीवन की समस्याओं में अनुशासनात्मक ज्ञान प्रासंगिक है? बेशक है। अगर मुझे किसी ऐसी समस्या को हल करना हो जिसमें गणित या भौतिकशास्त्र के ज्ञान की जरूरत हो तो फिर उस अनुशासन का ज्ञान एक आवश्यक शर्त है। पर यह शर्त यथेष्ट नहीं है। मेरे पास अनुशासन का ज्ञान हो सकता है, पर मैं फिर भी वास्तविक जीवन स्थिति में प्रतिक्रिया करने में असफल हो सकता हूं। इसलिए क्योंकि मैं आवश्यक समायोजन नहीं करता या उन आवश्यकताओं को देख ही नहीं पाता। तो इस पर मैं कैसे प्रतिक्रिया करूं?

राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करने की *पीसा* की शक्ति दरअसल इस मान्यता से आती है कि *पीसा* जिसे जांचता है वह दरअसल पाठ्यचर्या में निर्धारित अनुशासनात्मक ज्ञान नहीं है। बल्कि बच्चों की वह क्षमता है जिसके द्वारा वे वास्तविक जीवन में अधिक कुशलतापूर्वक तथा अधिक उपयुक्त तरीके से काम कर पाते हैं। परन्तु इन दोनों बातों के बीच एक अवधारणात्मक फासला प्रतीत होता है, जिसे अधिक शोध से पाटा जा सकता है। यह पता लगाने के लिए हमें स्वतंत्र शोध करनी होगी कि जिन्हें *पीसा* परीक्षाओं में अधिक अंक मिलते हैं वे दुनियाभर में वास्तविक जीवन-स्थितियों में दरअसल सफल भी हैं।

अगर आपको उस व्यक्ति को सुनना हो जिसने यह आलेख लिखा है, तो पीसा परीक्षण किस चीज का कर रहा है? *पीसा* यहां *'पीसा ज्ञान'* को जांच रहा है। बात बस इतनी ही है। *पीसा ज्ञान* का वास्तविक जीवन के समस्या समाधान से क्या रिश्ता है? यह रिश्ता हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है। फिलहाल इस विषय पर खास प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। फिर *पीसा* को उसका सम्मानजनक स्थान कहां से मिलता है कि हरेक देश उसमें शीर्ष पर होना चाहता है? सिर्फ उस मान्यता के आधार पर जिसकी पुष्टि प्रमाण से नहीं की जा सकती। यहां एक समस्या है जिसे मैं 'हम दरअसल जांच क्या रहे हैं?' कह रहा हूं।

यहां मसला यह नहीं है कि *पीसा* अनुशासनात्मक ज्ञान की परीक्षा नहीं कर सकता। हालांकि वह व्यक्ति उनके उदाहरण देता है और तब मैंने उन उदाहरणों को *पीसा* दस्तावेजों में जांचा और वे सच निकले- ऐसे अनेक उदाहरण वहां हैं जिनमें अस्पष्टता, संस्कृति

विशेष संबंधी प्रश्न, एक दम गलत व्याख्या व कई अन्य चीजें मौजूद हैं। परन्तु यहां मसला यह है ही नहीं क्योंकि मैं इस प्रस्तुति में यह सवाल उठा ही नहीं रहा कि *पीसा* परीक्षाएं अनुशासनात्मक ज्ञान को जांच सकती हैं या नहीं। मैं केवल यही सवाल कर रहा हूं कि इस प्रकार जांचा गया अनुशासनात्मक ज्ञान वास्तविक दुनिया में आने वाली समस्याओं का समाधान करने के लिए पर्याप्त है; यह कह पाने के लिए खास प्रमाण नज़र नहीं आता।

अब हम क्या जांचा जा रहा है, इसके अगले स्तर पर चलें। विरल ज्ञान बनाम समृद्ध ज्ञान का परीक्षण- यहां हम दूसरे स्तर तक आते हैं। दूसरा स्तर है कि जिस ज्ञान का हम परीक्षण कर रहे हैं, उसे संभवतः वास्तविक जीवन स्थितियों पर सीधे-सीधे लागू नहीं किया जा सकता और शायद हम उनके बारे में कुछ कह भी नहीं सकते। पर क्या हम इस बारे में कुछ कह सकते हैं कि उस ज्ञान को सही ढंग से जांचा जा रहा है या नहीं? यही वह समस्या है जिससे हम यहां निपटेंगे।

यह चर्चा 2006 में प्रकाशित एन्ड्रू डेविस के आलेख पर आधारित है। इसका शीर्षक है *हाई स्टेक्स् टैस्टिंग एण्ड द स्ट्रक्चर ऑफ द माइण्ड* (ऊंचे दांव वाली परीक्षा तथा मस्तिष्क की संरचना)। यह शीर्षक भला क्यों? कल प्रो. जैकब थारू हमें बता रहे थे कि परीक्षण के दौरान हम कुछ ऐसी चीजों का अवलोकन करते हैं जिनका संबंध शिक्षार्थी के आचरण से है। तो फिर, चाहे हमें यह अच्छा लगे या न लगे, हम जितने भी आंकड़े इकट्ठा करते हैं वे शिक्षार्थी के आचरण के अवलोकन के माध्यम से ही आते हैं। एक बार जब सूचनाएं आ जाएं, हम उसकी व्याख्या कर सकते हैं, हम उसे तार्किक दृष्टि से देख सकते हैं। अपनी कल्पनाशीलता लागू कर सकते हैं और हम आकांक्षा भरे चिंतक बन सकते हैं या अपने रुझानों को उन पर लागू कर सकते हैं। सूचनाएं एकत्रित करने के बाद हम कई चीजें कर सकते हैं। परन्तु ये सूचनाएं केवल शिक्षार्थी के आचरण को देखने से मिलती हैं। अगर मैं कागज पर लिखने के बारे में सोचूं, तो यह भी उस अर्थ में आचरण का ही एक हिस्सा बन जाता है।

पर हमें सावधानी बरतनी चाहिए। क्योंकि आंकड़े आचरण से आते हैं तो इसका अर्थ यह नहीं है कि हमारी व्याख्या भी व्यवहारवादी ही हो। व्यवहारवाद वह सिद्धान्त है जो आचरण का स्पष्टीकरण किन्हीं सैद्धान्तिक मान्यताओं द्वारा देता है। और ऐसे दूसरे सिद्धान्त भी हो सकते हैं जो आचरण का स्पष्टीकरण किन्हीं भिन्न मान्यताओं के आधार पर देते हैं। ये सिद्धान्त संज्ञानवादी या किसी दूसरे प्रकार के हो सकते हैं। अतः यह जरूरी नहीं है कि अगर हम अपने आंकड़े आचरण के अवलोकन से एकत्रित करें तो उनकी व्याख्या भी आवश्यक रूप से व्यवहारवादी ही होगी। परन्तु हम अपने आंकड़े अन्यत्र कहीं से नहीं पा सकते।

अपने आंकड़े पाने के बाद हम क्या करते हैं? हम शिक्षार्थी के मस्तिष्क की एक छवि रचने की चेष्टा करते हैं। अन्यथा जब हम यह कहें कि बालिका यह कर सकती है और वह नहीं, बालक यह समझता है पर वह नहीं, तो हम दरअसल बालक के मस्तिष्क में जो है उसका पूर्वानुमान, हमने उसके आचरण में बाहर जो देखा उसके आधार पर लगा रहे होते हैं। तो इस आधार पर हम बालक के मस्तिष्क की एक छवि रचते हैं। यही कारण है कि आलेख शीर्षक में 'मस्तिष्क की छवि' शामिल है।

इसके बाद लेखक ज्ञान में अंतर को परिभाषित करते हैं। ज्ञान के विषय में यह भेद विख्यात है- समृद्ध ज्ञान तथा विरल ज्ञान। वे तर्क करते हैं कि समृद्ध ज्ञान की खासियत यह है कि वह जानने वाले के मस्तिष्क में मौजूद अन्य ज्ञान से समुचित रूप से संबद्ध है। अगर आप किसी भी सरल-सी प्राक्कल्पना को लें- और यहां हम मुख्यतः प्राक्कल्पनीय विषयों की बात कर रहे हैं- जैसे पृथ्वी सूर्य के गिर्द घूमती है, तो इसी प्रकार की दर्जन भर या उससे भी अधिक प्राक्कल्पनाएं होंगी जो उक्त धारणा की विषयवस्तु को बनाती होंगी और केवल इसी संबद्धता में ही वह ज्ञान बनता है।

इसके विपरीत विरल ज्ञान में ऐसी संबद्धता का अभाव होता है और विरलतम ज्ञान, तो ज्ञान हो ही नहीं पाता। अर्थात् ऐसे में उपरोक्त प्राक्कल्पना बिल्कुल अकेले रह जाती है और उसका किसी भी अन्य वस्तु से कोई जुड़ाव नहीं होता। अतः इस अर्थ में उसे ज्ञान कहा भी नहीं जा सकता।

इसलिए ज्ञान की व्यवहार्यता- वास्तविक जीवन में उसे समझना, उसे आगे इस्तेमाल करना, सीखने, निष्कर्ष निकालने में उसका प्रयोग करना आदि - इस बात पर निर्भर करता है कि आपका वह ज्ञान संबद्धताओं में कितना समृद्ध है। यह सोचने के एक खास तरीके से आता है; इसलिए मेरा विश्वास है कि यह अनुच्छेद इसे कुछ अधिक स्पष्ट करेगा। यहां कुछ ऐसे दावे हैं जिन पर हमें आपत्ति हो सकती है और शायद हमें वे पसंद न आएं। फिर भी उन्हें देखना लाभदायक होगा। यह अनुच्छेद कहता है:

> *परमाण्विकी नजरिया अपनाना असंभव है, क्योंकि यह विचार ही निरर्थक है कि केवल एक या दो विश्वास/मान्यताएं होंगी। विश्वास- इस प्रकार के प्राक्कल्पनीय विश्वास जिनमें कहा जाता है कि पृथ्वी*

सूर्य के गिर्द चक्कर लगाती है या पृथ्वी सपाट है या गोल है, चंद्रमा हर शाम उदित होता है, मनुष्य वास्तव में बेहद दुष्ट या फिर अच्छे होते हैं या कोई दूसरी ही धारणा- इसके बारे में दावा यह है कि वे केवल एक या दो नहीं हो सकते। विश्वास एक-एक करके नहीं आते। विश्वास को जो चिह्नित करता है और जो विश्वास को बनाता है, वह है अनेक दूसरे विश्वासों के साथ उसका संबंध। क्योंकि विश्वास विशिष्ट नहीं होते और अन्य विश्वासों के साथ उनके संबंध द्वारा ही चिह्नित किए जा सकते हैं, अगर कोई भी मान्यता को होना है तो हमारे पास बड़ी संख्या में मान्यताएं होनी ही होंगी।

यहां फिर से मैं यह उदाहरण दे सकता हूं कि अगर आप यह विश्वास करना चाहते हैं कि पृथ्वी चपटी है या फिर वह गोल है, तो आप केवल इस विश्वास को नहीं स्वीकार सकेंगे। आपके पास इसके साथ अनेकानेक दूसरे विश्वास भी होंगे और वे ही इस विश्वास को आधार देंगे, उसको औचित्य प्रदान करेंगे, उसे सिद्ध करेंगे। उसे सत्य या असत्य घोषित करेंगे। अतः आपका वह विश्वास हमेशा दूसरे विश्वासों के साथ इसी संबद्धता में ही होगा। इसलिए, विश्वास एक-दूसरे को अवलंबन देते हैं, एक-दूसरे को विषयवस्तु और एक-दूसरे को समर्थन प्रदान करते हैं। यह ज्ञान का समृद्ध नजरिया है।

और तर्क यह है कि ज्ञान का समृद्ध नजरिया या समृद्ध ज्ञान ही वांछनीय ज्ञान है। क्योंकि केवल ऐसा ही ज्ञान आगे सीखने और जीवन की समस्याओं को हल करने में, जीवन में फैसले लेने, जीवन में संघर्ष करने में या आप जो कुछ करना चाहते हैं उसमें इस्तेमाल किया जा सकेगा। इसका अच्छे या बुरे से कोई रिश्ता नहीं है- यदि कोई चोरी भी करे तो भी उसको इस ज्ञान और इसी प्रकार के अनेक जुड़ावों की जरूरत होगी।

इसलिए, व्यापक स्तर के आकलन विश्वासों को परमाण्विक मानते हैं और उनकी पारस्परिक संबद्धता को कभी नहीं जांच सकते। इस बात पर मुझे अधिक तर्क करने की आवश्यकता नहीं लगती। आप अगर अधिकांश सवालों पर नजर डालें तो पाएंगे कि वे केवल एक या दो चीजों का ही परीक्षण करते हैं। अगर आप उन्हें जोड़कर एक से अधिक प्रश्न की शृंखला भी बना दें, तो भी वे बेहद सीमित ही होंगे और उसमें भी समस्या होगी। अतः इस प्रकार का परीक्षण, एक स्तर पर केवल निरर्थक शब्दों की शृंखला को ही जांचता है। संभव है कि इस समय यह वक्तव्य बेहद सख्त लगे। पर मेरा मानना है कि जब हम अगले मुद्दे पर आएंगे तो इसे अधिक वैधता मिल सकेगी। संभव है कि यह पूर्णतः स्वीकार्य न बन सके। परन्तु उस अर्थ में कुछ अधिक रुचिकर लगेगा। तो यह था दूसरा मुद्दा कि व्यापक स्तर पर होने वाली परीक्षण व्यवस्था में जिस प्रकार के ज्ञान को जांचा जा सकता है वह बेहद विरल ज्ञान है और भविष्य में सीखने के साथ इसका रिश्ता बेहद क्षीण है।

तीसरी बात है आकलन के परिप्रेक्ष्य बनाम व्यापक आकलन की विश्वासनीयता तथा वैधता की। इनके बीच का संबंध कुछ ऐसा है, जिसमें अगर आप समृद्ध ज्ञान को जांचने लगे, तो वैधता बढ़ती है और वस्तुनिष्ठता तथा विश्वसनीयता कम हो जाती है। अगर आप परीक्षण को अधिक विश्वसनीय तथा वस्तुनिष्ठ बनाना चाहें, तो नौसिखिए मस्तिष्क के स्तर पर वैधता कम हो जाती है। और ऐसे में आपके पास काफी वस्तुपरकता और विश्वसनीयता तो होगी लेकिन वह अंदर से खोखली होगी। तो यह समस्या इस प्रकार की है।

मैं आपको चेता दूं कि यह बात आपको शुरुआत में रुचिकर नहीं लगेगी। पर मैं यह सिद्ध करने की चेष्टा करूंगा कि यह हो सकता है। इस वक्तव्य को देखें। इस व्यक्ति का आलेख इस स्तर तक पहुंचा जहां उत्तर उस प्रकार के हों जिसे आप सही तथा गलत परिदृश्य कहते हैं। जरा इस सवाल को देखें- भारत का प्रधानमंत्री कौन है? दिया गया जवाब है मनमोहन सिंह, जो भाजपा के अध्यक्ष हैं। आप जरा सोचकर देखें कि 'हमने इस बच्चे से यह क्यों पूछा कि भारत का प्रधानमंत्री कौन है? यह समझने के लिए हमें अपने मस्तिष्क में उसके मस्तिष्क की एक छवि बनानी होगी कि वह देश की राजनीतिक स्थिति को कितनी अच्छी तरह से समझता है। उत्तरदाता ने आपको एक सही उत्तर दिया। यह जवाब आपको बताता है कि उसका जवाब औपचारिक रूप से सही था पर वास्तव में निरर्थक है, क्योंकि उससे किस प्रकार की राजनैतिक जुड़ाव निकाला जा सकता है, वह मैं जानता तक नहीं।

वास्तविक जीवन में सभी शिक्षक यह जानते हैं कि जब कोई बच्चा उत्तर देता है, तब वह उत्तर औपचारिक रूप से सही हो सकता है, पर शिक्षक फौरन यह पहचान लेता है कि उसमें कुछ गड़बड़ है। शिक्षक को ऐसे संकेत कैसे मिलते हैं? कभी तो जिस तरह बच्चा बोलता है उससे, कभी उस अतिरिक्त शब्द से जिसका बालक उपयोग करता है। ऐसी स्थितियों से शिक्षक अच्छी तरह से वाकिफ होते हैं।

हो सकता है आपको यह अतिरंजना लगे, ऐसी बात जो संभवतः असत्य हो। तो मैं आपको कुछ उदाहरण देता हूं। परिदृश्य 1 : यह भूगोल के स्नातकों में काफी आम है और मैंने इसे एकाधिक बार जांचा है- 'मौसम इसलिए बदलते हैं क्योंकि पृथ्वी की धुरी

23.5 अंश पर झुकी हुई है'। और तब वे यह जानना चाहेंगे कि 'किससे झुकी है' या 'केवल झुकी' हुई है।

ऐसा ही अभागा एक बार हृदयकांत दीवान से टकरा गया। वह उस कार्यशाला में एक प्रस्तुति देना चाहता था जिसमें हृदयकांत दीवान मुख्य भूमिका में थे। कार्यशाला 'मौसम कैसे बदलते हैं' पर थी। हृदयकांत दीवान ने अपनी चिर-परिचित शैली में उससे पूछा, 'मौसम क्यों बदलते हैं?'

उसने कहां, 'क्योंकि पृथ्वी झुकी हुई है'।

'किस चीज से झुकी है, भला?'

वह शब्दों की बाजीगरी करने लगा। अंततः उसने कहा, 'देखिए, यह पृथ्वी है। यह उसकी धुरी है और यह इससे झुकी हुई है। उसने एक रेखा खींची। यह सामान्यीकरण किया कि अगर किसी मेज पर कोई जग रखा है तो उसके नीचे एक सतह होती है- एक समतल सतह, तो पृथ्वी की भी कुछ ऐसी ही सतह होती होगी। यह एक वास्तविक परिदृश्य है। और मैं नहीं जानता कि जब हम यह कहते हैं कि यह झुकाव 23.5 अंश है तो इस व्यक्ति को यह पता है कि बात सच है या गलत।

दूसरा उदाहरण। यह भी एक वास्तविक उदाहरण है जो राष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित एक प्रश्नोत्तर कार्यक्रम से लिया गया है।

'हर्षचरित किसने लिखा?'

'बाण भट्ट'।

'बाण भट्ट जिस शासक के दरबार में एक सम्मानीय सदस्य थे उसका नाम बताएं'?

'अकबर'।

दुर्भाग्य से हर्षचरित की रचना अकबर से तकरीबन एक हजार साल पहले हो गई थी। यह गड़बड़झाला था। इसलिए उत्तरदाता की ऐतिहासिक समझ जाहिर ही थी।

कोई यह सोच सकता है कि यह ऐसे शिक्षार्थियों के साथ होता है जो ठीक से पढ़ाई नहीं करते। इसलिए अगले दो वक्तव्य ऐसे अकादमिकों के लें जो खासे जाने-माने हैं। बात कुछ तकनीकी है। उनका कहना है, 'ज्ञान की समकालीन मीमांसा तथा विश्लेषण यह है कि *ज्ञान प्रमाणित सत्य विश्वास* है, लेकिन यह वैज्ञानिक ज्ञान के बारे में नहीं है।' ज्ञानमीमांसा में लोग बाल की खाल निकालते हैं और यह कहते हैं कि हम किसी मान्यता को केवल तब ही ज्ञान मानेंगे जब वह प्रमाणित और सत्य हो। अब इस अकादमिक के अनुसार ऐसा विश्लेषण वैज्ञानिक ज्ञान को ढंग से नहीं समझ सकता।

पर जब आप इसी अकादमिक से पूछें कि वैज्ञानिक ज्ञान है क्या? आपको अगली परिभाषा मिलती हैः वैज्ञानिक ज्ञान तार्किक रूप से प्रमाणित निष्कर्ष है जिसे वैज्ञानिक युक्तिसंगत संदेह के परे सत्य मानते हैं। यहां यह व्यक्ति यह नहीं देख पाता कि उसका वक्तव्य पहले अकादमिक के वक्तव्य से भिन्न है। निश्चित रूप से समकालीन ज्ञानमीमांसा में लगभग सौ या दो सौ साल पहले स्थिति भिन्न हो सकती थी। लेकिन समकालीन ज्ञानमीमांसा में सही/गलत का परिदृश्य प्राप्त होता है।

मैं यहां यह कहने की कोशिश कर रहा हूं कि सही/गलत वाला परिदृश्य कोई बिरली बात नहीं है। बल्कि जितना हम सोचते हैं उससे कहीं अधिक है। इसलिए सही/गलत परिदृश्य ज्ञान को अभिव्यक्त नहीं करते- वे ज्ञान का परीक्षण नहीं करते। दरअसल वे गलतफहमी को अभिव्यक्त करते हैं और उसी गलतफहमी को ज्ञान मान लिया जाता है।

व्यापक स्तर का परीक्षण जांच के पूर्व-निर्धारित स्वरूप को उपयोग में लेता है। इसका मतलब है कि इससे ऐसा उत्तर मिलता है जो पहले से निर्धारित हो और अगर बालिका वह जवाब दे देती है तो यह मान लिया जाता है कि उसके पास ज्ञान है और अगर वह तयशुदा जवाब नहीं देती तो उसके पास ज्ञान नहीं है। पर स्थिति आसानी से यह भी हो सकती है कि वह बालक इस पल आपको सही और वांछित उत्तर दे दे, फिर भी उसके पास ज्ञान न हो। यही वह बिन्दु है जिसे सही/गलत परिदृश्य सिद्ध करना चाहता है। और व्यापक परीक्षण में जिसमें कागज-पेंसिल लेकर परीक्षा दी जाती है आप इस कठिनाई के परे नहीं जा सकते।

एक सवाल यह भी है कि ऐसे व्यापक परीक्षण कौन कर सकता है? व्यापक स्तर की कागज-पेंसिल वाली परीक्षा में कुछ मानक उत्तरों की आवश्यकता होती है। ये मानक उत्तर किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा भी दर्ज किए जा सकते हैं जो विशेषज्ञ न हो और उसे कभी दो घंटे या कभी दो दिन और बिरले ही तीन से अधिक में प्रशिक्षित किया जा सकता है। वे जाकर परीक्षा ले सकते हैं और वापस आ सकते हैं। ऐसे लोग कभी सौ, तो कभी हजार भी हो सकते हैं। इसका एक उदाहरण हम अभी देख सकते हैं और कुछ शोधकर्ता उन नतीजों की व्याख्या कर सकते हैं।

अतः इन उत्तरों को इकट्ठा करने में ऐसी तर्कसंगत समानता जरूरी है ताकि उन्हें एकत्रित करने वाले हजारों-हजार लोगों में वस्तुनिष्ठता खो न जाए। ऐसी स्थिति की मांग यह होगी कि उत्तर वस्तुनिष्ठ हो, जिसे सही माना जा सके। परन्तु अगर आप इसके भी परे जाना चाहते हैं, तो यह व्यापक हो जाएगा। इस अर्थ में कि अगर

आकलनकर्ता को लगे कि कुछ गड़बड़ हो सकती है, तो वह इस वार्तालाप को कुछ आगे भी ले जा सके।

अब इस प्रकार के पूछे जा सकने वाले प्रश्नों को पहले से खत्म नहीं किया जा सकता। वे तो वास्तविक परीक्षण स्थिति पर निर्भर करेंगे, जिसमें एक जवाब दिया जाता है, उस जवाब की व्याख्या आकलनकर्ता करता है और तब आकलनकर्ता की ओर से अगला सवाल आता है। अर्थात् जो जुड़ाव आकलनकर्ता बैठाता है उस पर ही यह निर्भर करेगा। अगर हम इस सबकी अनुमति देते हैं तब शायद आप शिक्षार्थी के ज्ञान की प्रमाणिकता को कुछ अधिक बारीकी से भांप सकेंगे। परन्तु ऐसी स्थिति में विभिन्न आकलनकर्ताओं के बीच भारी अंतर भी होगा। अतः आंकड़ों की विश्वसनीयता भी घटेगी। तो यहां दो दिशाओं में खिंचाव नजर आता प्रतीत होता है। जब आप व्यापक स्तर के आकलन कर रहे हों, तो आपको कोई एक पक्ष को चुनना होगा और तब भी यह ज्ञान का परीक्षण करता प्रतीत नहीं होता है।

परन्तु संबद्ध ज्ञान और समझ के आकलन का एकमात्र तरीका- जैसा मैं पहले ही कह चुका हूं- विस्तृत रूप में हो सकता है। अगर इसकी अनुमति दी जाए तो विभिन्न आकलनकर्ताओं के बीच विश्वसनीयता और वस्तुनिष्ठता निश्चित रूप से घटेगी अर्थात् जिस चीज का विश्वसनीय रूप से आकलन किया जा सकता है वह शिक्षार्थी के ज्ञान की दृष्टि से वैध नहीं है। और जिसका वैधतापूर्वक आकलन किया जा सकता है वह खास विश्वसनीय और वस्तुनिष्ठ नहीं लगता। हम कुछ ऐसी स्थिति में पहुंच जाते हैं।

अब हम दो उदाहरण लेंगे। जैसा मैं कह चुका हूं कि *पीसा* परीक्षा- *पीसा ज्ञान* और उसको प्राप्त सम्मानजनक स्थान- इस दावे से उभरते हैं कि वे वास्तविक जीवन ज्ञान का परीक्षण करते हैं। अब इस दृष्टिकोण से देखें तो यह दावा नाजायज प्रतीत होता है। अब दूसरा उदाहरण लें। हम *असर* (असैसमेंट सर्वे इवैल्यूएशन रीसर्च) को लेते हैं। अगर आप *असर* परीक्षा को देखें, आप भाषा या गणित का कोई भी उदाहरण ले सकते हैं। मैं उन्हें यादृच्छिक रूप से चुन रहा हूं। मुझे उनमें तीन या चार समस्याएं दिखती हैं। पहली तो यह है कि इसके स्वयंसेवकों में बड़ी संख्या में ऐसे लोग हैं जो पठन और लेखन के विषय में कुछ भी नहीं जानते यानी पठन या लेखन के शिक्षाशास्त्र के विषय में अनभिज्ञ हैं।

यहां विश्वसनीयता इस बात पर आधारित है कि इन परीक्षाओं को इस प्रकार लिया और डिजाइन किया जाता है कि कोई भी उन्हें ले सके। यह कुछ ऐसा विचार है कि कोई भी व्यक्ति जो क, ख, ग जानता है, वह कक्षा में क, ख, ग, पढ़ा भी सकता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि जो भी पढ़ सकता है वह पढ़ना सिखा सकता है। इसलिए शिक्षक के लिए पांचवीं या छठी पास होने की जरूरत है। यहां आप यह कह रहे हैं कि जो भी पाठ पढ़ सकता है वह यह आकलन भी कर सकता है कि बच्चा दरअसल पाठ पढ़ रहा है या नहीं। क्यों भला? इसलिए क्योंकि हमने ऐसी परीक्षाएं और उन्हें लेने के ऐसे तरीके तैयार किए हैं जो बिल्कुल अचूक हैं!

मुझे पता नहीं कि इसका वर्णन किया गया या नहीं, पर मैं जो कहना चाहता हूं, वह केवल तब ही स्पष्ट हो सकेगा जब मैं इस परीक्षा के बारे में कुछ बता दूं। इसकी विधि कुछ इस प्रकार की है (दूसरी भी कई बातें हैं- जैसे गांव में की गई बैठक आदि- पर मैं उन्हें अभी छोड़ रहा हूं)। अगर मैं एक आकलनकर्ता हूं, मैं एक बच्चे को लेता हूं, तब मुझे उसे एक पाठ दिखाना है- पहले अक्षरों जैसा कुछ- और तब बच्चे से उसमें से किन्हीं भी पांच को पढ़ने को कहना है। अगर बच्चा उनमें से चार सही-सही पढ़ लेता है तो मैं अगले स्तर पर बढ़ूंगा। अगर बच्चा ऐसा नहीं कर पाता तो मैं यह दर्ज करता हूं कि उसे अक्षर पढ़ने नहीं आते और तब मैं इस बच्चे के लिए परीक्षा समाप्त कर देता हूं।

अगर बच्चा अक्षर पढ़ लेता है, तो मैं शब्दों पर आ जाता हूं और यहां भी अगर बच्चा कुछ तयशुदा संख्या के शब्द सही पढ़ लेता है तो मैं वाक्यों पर बढ़ता हूं। इसके बाद पाठों की दिशा में। मतलब एक तयशुदा रुटीन है जिसमें यह सब चलता है और आकलनकर्ता पहले से ही सारे उत्तर जानता है।

अगर आप भाषा के शिक्षाशास्त्र को देखें तो आज के वक्त में दरअसल कोई भी यह नहीं मानता कि भाषा इस तरह सीखी जाती है। पठन का आविर्भाव इस तरह नहीं होता- पहले अक्षर ज्ञान और जब आप उसमें पारंगत हो जाएं तब शब्द। शब्दों में निष्णात होने के बाद वाक्य और उसमें दक्षता पाने के बाद पाठ या अनुच्छेद। यह विधि और तरीका आज के वक्त में प्रतिगामी लगते हैं क्योंकि ये परीक्षाएं केवल अक्षर, वाक्य आदि पढ़ने की असंबद्ध परीक्षाएं नहीं हैं। इनमें पढ़ना सीखने के विभिन्न चरण होने चाहिएं। जैसे ही आप उनको चरणों के रूप में लेते हैं, तो यह आपको एक शिक्षाशास्त्र देता है और वह शिक्षाशास्त्र प्रतिगामी और पुराना है।

यहां दो चीजें साथ-साथ घट रही हैं। मुझे लगता है कि आपको एक-दूसरे सेट को देखना होगा जिससे आप भारत में बच्चों की साक्षरता (लिखना-पढ़ना सीखने) की समस्या को समझ सकते हैं। इसे साक्षरता शिक्षा में चिह्नित किया गया है या कहें पठन और लेखन में। यह डिकोडिंग की समस्या भी है, लेकिन मुख्य समस्या

डिकोडिंग की नहीं है। कई उच्च माध्यमिक या उच्चतर माध्यमिक या स्नातक पास ऐसे शिक्षार्थी होते हैं कि अगर आप उन्हें एक पृष्ठ का पाठ दें, तो वे उसे अच्छे से पढ़ सकेंगे। आप उन्हें सुन सकते हैं। वे शायद सही लहजा भी जोड़ सकें। पर जहां तक उसके अर्थ तक पहुंचने का सवाल है, वे बिल्कुल कोरे मिलेंगे। अर्थात् वे अर्थ निकाले बिना या बिना समझे ही डिकोडिंग करत हैं।

अब यह भी सही है- कम से कम कई लोग ऐसा मानते हैं और इस विषय में कुछ अध्ययन भी हैं कि प्रारंभिक बाल्यावस्था में, अगर आप लम्बे अर्से तक किसी बच्चे को अर्थ निकाले बिना पढ़ना सिखाएं तो उसके लिए अर्थ समझना महत्त्वहीन बनता चला जाता है और अक्षरों का डिकोडिंग प्राथमिक महत्त्व का। यही इस शिक्षाशास्त्र की समस्या है। तो फिर आप जो कर रहे हैं, वह इसी शिक्षाशास्त्र के आधार पर बच्चों का आकलन है।

इस आकलन को मीडिया में, अखबारों में और अन्यत्र भी बहुत स्थान दिया जाता है। उसके आधार पर आप राज्यों को दरजा देने लगते हैं, ठीक उसी तरह जैसे *पीसा* देशों को एक क्रम में रखता है। अतः राज्यों को इस परीक्षा में बेहतर प्रदर्शन करने की चिंता सताने लगती है। ऐसी परीक्षा की चिंता जिसका समझना-सीखने से कोई लेना-देना ही नहीं है। पिछले बीस वर्षों से भारतीय शिक्षा व्यवस्था इस *असर शिक्षाशास्त्र* के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है और शब्द या वाक्य या एक अधिक व्यापक शिक्षाशास्त्र की ओर जाने की चेष्टा कर रहा है। जबकि यह बेहद प्रचलित आकलन उसी पुराने शिक्षाशास्त्र को पुष्ट करता है।

मैं यह नहीं कह रहा कि इसका कोई फायदा ही नहीं हुआ। मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि इसने एक स्तर पर पढ़-लिख पाने की बच्चों की अक्षमता की ओर ध्यान आकर्षित किया है। परन्तु पठन और लेखन की जो परिभाषा है और पठन व लेखन के विषय में जो दावे किए जा रहे हैं; वे गलत हैं। और शिक्षा व्यवस्था में जिस शिक्षा पर बल दिया जा रहा है वह पूरी तरह गलत है।

यह बात व्यापक पैमाने पर आयोजित की जाने वाली सभी परीक्षाओं पर लागू की जा सकती है। यह बात मैं जानबूझकर कम से कम दो परीक्षाओं- *पीसा* तथा *असर*- के बारे में खासतौर से कह रहा हूं। हो सकता है कि वे इसका निहितार्थ ही न समझते हों- भाषा के शिक्षाशास्त्र आदि को न जानते हों। पर फिर मैं यह भी नहीं समझ पाता कि वे आखिर इस सबसे करना क्या चाहते हैं। वे भले, सरोकार रखने वाले, सहृदय लोग हो सकते हैं, लेकिन आकलन करने के लिए पूरी तरह अनुपयुक्त हैं।

दूसरी स्थिति यह हो सकती है कि वे समस्या को समझते हों और उनके पास इसके लिए उपयुक्त जवाब हों। ऐसा है तो उन्हें उस जवाब को सार्वजनिक करना चाहिए। हमें इस समस्या पर उनके जवाब का पता ही नहीं है क्योंकि वे इस सवाल का कभी जवाब नहीं देते। तीसरी स्थिति यह हो सकती है कि वे समस्या को समझते तो हैं पर उनके पास कोई जवाब नहीं है, फिर भी वे इस परीक्षा को ले रहे हैं। अगर यह बात है तो यह शिक्षा में बेहद गैर-जिम्मेदाराना कृत्य है।

इस गैर-जिम्मेदारी पर मैं कुछ क्षण बिताना चाहता हूं। इन कमजोर मान्यताओं- इस प्रकार की अवधारणात्मक समस्याओं के साथ एक और बात जुड़ी है। ऐसी परीक्षाओं में शिक्षा व्यवस्थाओं को इस या उस दिशा में धकेलने की भारी क्षमता होती है। और क्षमता उन मान्यताओं को सही स्वीकारने के कारण आती है, जो दरअसल गलत हैं। सच तो यह है कि *पीसा* आजकल कई देशों की शिक्षा व्यवस्थाओं से जुड़े लोगों को रात को चैन से सोने नहीं देता। क्योंकि उनमें से प्रत्येक सबसे ऊंचे स्थान पर या कम से कम एक सम्मानजनक स्थान पर होना चाहता है। इसमें भी कोई बुराई नहीं है। पर मुद्दा यह है कि *पीसा* जिस प्रकार के कारणों का दावा करता है वे जायज ही नहीं हैं।

असर परीक्षा भी इसी तरह की तमाम चीजें उभारता है। हम सब उनको लेकर चिंतित हैं। हमें चिंता करनी चाहिए परन्तु यहां भी जो कारण वे देते हैं और जिस तरह के अवधारणात्मक जुड़ाव वे बना रहे हैं- वे युक्तियुक्त नहीं हैं। फिर भी उनकी आवाज मजबूत है और वे शिक्षा व्यवस्थाओं को प्रभावित कर सकते हैं। हमें यह पता नहीं है कि इस तरह से प्रभावित कोई शिक्षा व्यवस्था भविष्य में सही दिशा पकड़ेगी या गलत दिशा।

हम अब सामाजिक तथा भावनात्मक मुद्दों का आकलन करने की ओर भी अग्रसर हैं और ऐसा हम इसे परिभाषित करे बिना, उन्हें कैसे सिखाया जाएगा और उनका कैसे आकलन किया जाएगा, इसे स्पष्ट किए बिना करना चाह रहे हैं। अगर आप सीखने के सामाजिक तथा भावनात्मक मुद्दों को संज्ञानात्मक तथा ज्ञान के मुद्दों से पूरी तरह विशिष्ट और असंबद्ध मान लें, तो फिर एक खास प्रकार की शिक्षण विधि और एक खास प्रकार का परीक्षण उपकरण होगा। और अगर आप उन्हें करीब से जुड़ा हुआ और एक-दूसरे को मजबूती से प्रभावित करने वाला मानेंगे तो आप एक भिन्न प्रकार की शिक्षण विधि और परीक्षण विधि तक पहुंचेंगे। और ये दो विधियां आपको दो भिन्न परिणाम देंगी। अतः इस करीबी संबंध को समझना जरूरी होगा।

इस प्रस्तुति द्वारा मैं तर्क यह नहीं करना चाहता कि आपको इसे बंद कर देना चाहिए। मैं दो-तीन तर्क देना चाहता हूं। अव्वल तो यह कि जब हम आकलन की योजनाएं विकसित करें तो हमें अवधारणात्मक रूप से कहीं ज्यादा स्पष्ट होना चाहिए। और जो लोग शिक्षा तथा शिक्षाशास्त्र से भली तरह से वाकिफ नहीं हों, उन्हें बच्चे क्या जानते हैं, क्या नहीं; इसकी घोषणा करते समय अधिक झिझक बरतनी चाहिए।

इसकी बात यह है कि व्यापक स्तर के अधिकांश परीक्षणों की मीडिया तथा अनुदान तक पहुंच है, इसलिए वे बेहद प्रभावशाली होते हैं। व्यवस्थाओं को लोगों के प्रति जवाबदेह होना चाहिए, वे इसकी खूब बात करते हैं। पर जिस तरह की गड़बड़ी वे पैदा कर रहे हैं उसके लिए वे किसके प्रति जवाबदेह हैं? यह अभी तक साफ नहीं है। उनकी जिन लोगों के प्रति जवाबदेही हो सकती है वे शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत लोग ही हो सकते हैं, जो परीक्षण, शिक्षा तथा अवधारणात्मक उलझावों को जानते हैं।

अतः शिक्षा अध्येताओं की यह जिम्मेदारी है कि वे इस विषय पर लगातार वाद-विवाद करें और इन बिन्दुओं को उठाएं। संभव है कि इस प्रकार की अनवरत अंतःक्रिया तथा बहस द्वारा आगामी कुछ वर्षों में हम परीक्षा लेने के कुछ ऐसे तरीके तलाश सकें, जो कुछ अधिक विश्वसनीय और कुछ अधिक वैध हों।

तीसरी बात यह है कि जो लोग इस प्रकार के प्रतिवेदनों को पढ़ रहे हैं उन्हें सब कुछ जस का तस नहीं स्वीकार लेना चाहिए और इन प्रतिवेदनों को लिखने वालों को कुछ अधिक विनम्रता बरतनी चाहिए। शुक्रिया ◆

भाषान्तर : पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

'शिक्षा विमर्श' द्वि-मासिक पत्रिका
स्वामित्व एवं अन्य सूचनाओं से संबंधित विवरण

घोषणा
फार्म-4 (नियम-8)

1. प्रकाशन का स्थान	:	जयपुर
2. प्रकाशन अवधि	:	द्वि-मासिक
3. मुद्रक का नाम	:	सुश्री रीना दास
नागरिकता	:	भारतीय
पता	:	दिगन्तर, टोडी रमजानीपुरा, जगतपुरा, जयपुर-302017 राजस्थान
4. प्रकाशक का नाम	:	सुश्री रीना दास
नागरिकता	:	भारतीय
पता	:	दिगन्तर, टोडी रमजानीपुरा, जगतपुरा, जयपुर-302017 राजस्थान
5. संपादक का नाम	:	विश्वंभर
नागरिकता	:	भारतीय
पता	:	150/10, शिप्रा पथ, मानसरोवर, जयपुर-302020 राजस्थान
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	दिगन्तर शिक्षा एवं खेलकूद समिति, टोडी रमजानीपुरा, जगतपुरा, जयपुर-302017 राजस्थान
7. मुद्रणालय का नाम	:	भालोटिया प्रिंटर्स
पता	:	1/398, पारीक कॉलेज रोड, जयपुर-302006 राजस्थान

मैं रीना दास एतद् द्वारा घोषणा करती हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

20 मार्च, 2013

रीना दास
(प्रकाशक)